मानसिकता में बदलाव की दरकार

✍ प्रियंका गोस्वामी

वर्ष 2011 में मेरा कुछ स्कूलों में जाना हुआ। मैं शिक्षा के बारे में अपनी समझ बनाने के लिए स्कूलों में जा रही थी। स्कूल में किस पृष्ठभूमि के बच्चे आते हैं, शिक्षक कैसे काम करते हैं, बच्चों के प्रति स्कूल का व्यवहार कैसा होता है, आदि सवाल उस समय मेरे जहन में रहते थे। तब तक मैंने समावेशी शिक्षा के बारे में बहुत ज्यादा नहीं सोचा था और न ही मैं वहां इस उद्देश्य से गई थी। लेकिन मेरे अचेतन मन में यह सवाल कहीं अवश्य था कि शिक्षक इन सब मुद्दों को कक्षा में कैसे संबोधित करते हैं?

नई तालीम का एक स्कूल है जो बंगलौर के उपनगर में स्थित है। इस स्कूल का आर्किटेक्चर कुछ ऐसा है जहां कक्षा में कोई दरवाजे नहीं हैं और बच्चे चाहें तो एक से दूसरी कक्षा में आ–जा सकते हैं। लाइब्रेरी में या गलियारे में जाकर बैठ सकते हैं। बच्चे कक्षा में अपनी मर्जी से, अपनी पसंद से बैठते हैं। स्कूल की प्रातःकालीन सभा में किसी प्रकार का धर्म का प्रचार नहीं होता। न कोई भजन और न ही किसी और तरह का गीत गाया जाता है। इसमें सिर्फ व्यायाम की गतिविधियां होती हैं। स्कूल में कला को बहुत महत्त्व दिया जाता है। पर्यावरण तथा प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता बनाए रखने पर भी जोर है। बच्चों के लिए कोई यूनिफॉर्म नहीं है। बच्चे अपना खाना घर से लाते हैं। यूनिफॉर्म न होने के कारण बच्चों के कपड़ों में काफी फर्क दिखता है, जिससे ये समझ आता है कि बच्चे विभिन्न सामाजिक–आर्थिक तबकों से आते हैं। घर से लंच बॉक्स में आए खाने में भी इसकी झलक मिलती है।

मैं इस स्कूल में एक सप्ताह लगातार गई और हर रोज इन पहलुओं को गौर से देखा। मुझे यह समझ आया कि स्कूल ने बच्चों को एक जगह दे दी है जहां वे अच्छी शिक्षा हासिल कर सकते हैं, पर यह समझ नहीं आ रहा था कि शिक्षक इन विभिन्नताओं के बीच एक सकारात्मक वातावरण कैसे बनाए रख पा रहे हैं। इस वातावरण की वजह से सब बच्चे न केवल अच्छे से सीख रहे थे अपितु एक–दूसरे के प्रति बहुत ही सौहार्दपूर्ण माहौल भी था, जिसमें एक–दूसरे की मदद भी हो पा रही थी। बच्चों में किसी भी तरह की हीन भावना नहीं थी, न ही कोई ऐसी चीज दिखाई दे रही थी जो बच्चों के सीखने में बाधक बने और बच्चों में स्कूल के प्रति अलगाव पैदा करे।

एक उदाहरण देखिए, एक बच्चा व्हीलचेयर पर था। वह भी सुबह की असेंबली के दौरान अन्य बच्चों के साथ लाइन में शामिल होकर व्यायाम के दौरान अपने हाथ ऊपर–नीचे कर रहा था। असेंबली खत्म होने के बाद सब बच्चों की तरह वह भी कक्षा की तरफ चल पड़ा। जहां उसे मदद की जरूरत पड़ी वहां उसने अपने सहपाठियों से मदद मांगी और जहां नहीं थी वह खुद चला गया। ऐसा कोई शिक्षक या फिर बच्चा नहीं था जो उसकी मदद के लिए

उसके इर्द–गिर्द घूम रहा हो। ऐसा ही खेल के समय भी हुआ। यह इसलिए भी मुझे प्रभावित कर रहा था कि इस तरह के बच्चों को लेकर एक विशेष दया का भाव रखा जाता है। या तो इस तरह के बच्चों को अनदेखा किया जाता है या फिर इस कदर ध्यान रखा जाता है जो उनमें एक असहजता पैदा करता है।

लंच ब्रेक के दौरान तो विविध पृष्ठभूमि से आए बच्चे और भी स्पष्टता से दिखने लगे। एक तरफ कुछ बच्चों के डिब्बों में पिज्जा था तो दूसरी तरफ कुछ बच्चों के पास दाल–चावल थे। कुछ बच्चों के पास मीट भी था। दो प्री–प्राइमरी के बच्चे थे जिनमें से एक के पास शाकाहारी और दूसरे के पास मांसाहारी खाना था। शाकाहारी बच्चे ने बड़ी उत्सुकता से दूसरे वाले बच्चे के डिब्बे में देखा। उसी समय बच्चे ने एक मीट का छोटा टुकड़ा उसके हाथ में रख दिया, जो दूसरे ने झट से खा लिया। अब वह उसको पसंद आया कि नहीं वह दूसरी बात है। एक बच्चा जो पिज्जा लेकर आया हुआ था उसने भी बिलकुल सहज तरीके से दूसरे बच्चे को चखने को दिया।

शायद इस माहौल से बच्चों को एक–दूसरे की संस्कृति को समझने, घर के हालात से वाकिफ होने और उनमें संवेदनशीलता के बहुत सहजता से विकसित होने का मौका मिल रहा था। बाद के दिनों में मैंने इसका विश्लेषण किया। निश्चित ही इस स्कूल के माहौल में ही कुछ ऐसी चीजें थीं जो एक–दूसरे के प्रति सम्मान का भाव विकसित करती थीं बजाय नफरत पैदा करने के।

पढ़ाई के दौरान भी शिक्षक किसी बच्चे पर ज्यादा या कम नहीं, जरूरतानुसार ध्यान दे रहे थे। जिन बच्चों की ध्यान अवधि थोड़ी कम थी उनको कुछ ऐसे काम भी साथ–साथ दिए जा रहे थे जो उनकी एकाग्रता को बनाए रखे।

उन दिनों तो मुझे यह सब इतनी आसानी से होता हुआ देखकर ज्यादा समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे संभव हो पा रहा है। इसके पीछे किस तरह की शिक्षा की समझ है और शिक्षक कैसे इसको कर पा रहे हैं। परंतु बाद में कुछ समय विचार करने और विभिन्न साहित्य पढ़ने के बाद मुझे यह एहसास हुआ कि समस्या वहां नहीं बल्कि मेरे दिमाग में

थी। वयस्क होने के नाते और हमारे समाजीकरण के चलते हम अपने दिमाग में ऐसी छवियां बना लेते हैं कि उनसे बाहर निकलकर सोचना एक तरह से असंभव हो जाता है।

यह बात रेखांकित करना इसलिए जरूरी है क्योंकि बच्चे अभी अपनी दुनिया के बारे में अवधारणाएं बना रहे होते हैं और जो बात हमें भिन्न लगती है वह जरूरी नहीं उनको भी अलग लगे। परंतु यदि हम अपने पूर्वाग्रहों से संचालित होकर कुछ व्यवहार करते हैं तो उसका बच्चों पर गहरा असर पड़ता है। यहां इस स्कूल के शिक्षक इन सबके बारे में सोचते थे।

मैंने अपना यह अनुभव इसीलिए यहां रखा क्योंकि इससे पता चलता है कि समावेशी शिक्षा के रास्ते में जो समस्याएं हमें दिखती हैं वे बच्चे के स्तर पर नहीं हैं बल्कि हमारे मन में बनी अपनी अवधारणाओं की ही समस्या है। इसलिए हमें अपनी मानसिकता के निर्माण की प्रक्रिया को परखने की और बदलने की जरूरत है। हमें यह समझना होगा कि शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक की इसमें न सिर्फ महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है अपितु इन मान्यताओं को बदलने के लिए यह एक प्राथमिक साधन है।

जब हम समावेशी शिक्षण के बारे में सोचते हैं तो असली बात यहीं से शुरू होती है कि मेरे और आपके मन में क्या धारणा बनती है? यदि हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 को

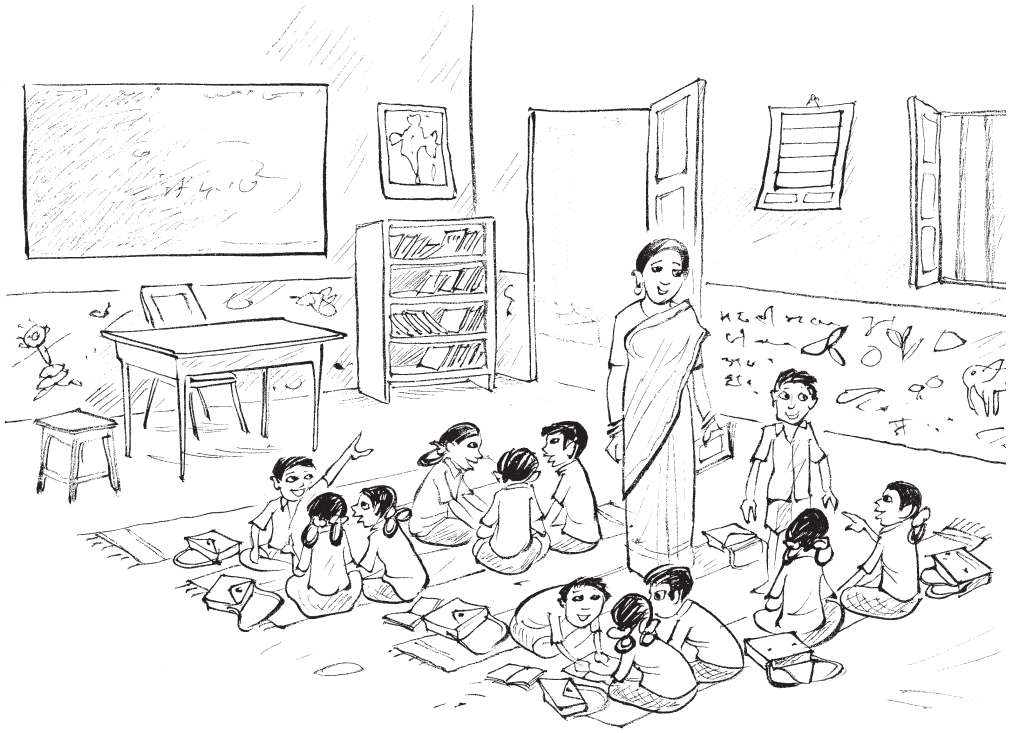

आधार मानें तो उसमें समावेशी शिक्षा के बारे में मूल रूप से पांच बातें निकलकर आती हैं :

1. विकलांगता
2. सहभागिता
3. अप्रतियोगी वातावरण
4. विविध क्षमताओं की स्वीकार्यता
5. सामाजिक सांस्कृतिक विविधता

बात यह उभरकर आती है कि सामान्य शिक्षा के उद्देश्य को हासिल करने के लिए कक्षा में सामान्य वातावरण का होना बहुत जरूरी है, जहां समावेशी शिक्षा अपना स्थान बनाती है। पिछले कुछ वर्षों से नीतियों के स्तर पर हमें काफी काम होते हुए दिखाई देते हैं और शिक्षा का अधिकार कानून ने इस संवाद को काफी गहरा एवं पैना किया है। इसके साथ ही शिक्षा के सार्वजनीकरण एवं गुणवत्ता की बात भी जोर से होने लगी है। अगर हम कुछ समय के लिए यह मानकर चलें कि हर तरह के बच्चों के लिए स्कूल आने के रास्ते खुल चुके हैं तो फिर दूसरा मुद्दा यह उठता है कि इन अलग–अलग तरह के बच्चों को कक्षा के स्तर पर क्या और किस तरह की समस्याएं आती हैं और उनके लिए कौन जिम्मेदार है।

कक्षा के स्तर पर हमें दो बिंदुओं पर गौर करना जरूरी है। पहला, यदि समावेशी शिक्षा को कक्षा के स्तर पर लागू करना है तो उसमें शिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए। पहली समस्या तो यह होती है कि जब भी पढ़ाने की किसी नई विधि की बात होती है और यदि उस शिक्षक ने खुद कभी उस नई विधि को न आजमाया हो और वह उसके बेहतर होने के कारणों से परिचित न हो तो वह उसमें रुचि लेगा ही नहीं। वह अपने पुराने तौर–तरीकों से ही कक्षा में कार्य करता रहेगा। यदि यह मान लें कि वह थोड़ा सा मेहनती और जागरूक शिक्षक है तो वह या तो उसको पढ़कर या फिर किसी से पूछकर उस विधि को समझने की कोशिश करेगा। प्रश्न यह है कि जब उसने समावेशी शिक्षा का अनुभव ही न किया हो तो उसे क्या सिर्फ कुछ किताबों से या किसी से पूछकर यह बात समझ आ सकती है? हमारे शिक्षक प्रशिक्षणों के हालात भी हम जानते हैं जिनमें शिक्षक प्रशिक्षक भी बिना अनुभव से उस नई विधि को सिखाने यानी बताने की कोशिश में रहते हैं। इसलिए ऐसा लगता है कि जब तक हम शिक्षक प्रशिक्षण में ही एक समावेशी शिक्षा की समझ के लिए वातावरण नहीं बनाते तो इस दिशा में हम आगे कैसे बढ़ेंगे?

इस बात को हम दो स्तरों पर देख सकते हैं। पहला और बेहतर रास्ता यह होगा कि सेवापूर्व शिक्षक विद्यार्थियों को जो भी समावेशी शिक्षा के बारे में पढ़ाया जाता है वह उसको शुरुआती तौर पर स्कूल में होते हुए भी देखें। बाद में ऐसी कक्षाओं में पढ़ाने की कोशिश करें और फिर वापिस आकर अपने शिक्षण अनुभव अपने सहभागियों एवं फैकल्टी के साथ बांटें। इस प्रक्रिया में वे न सिर्फ सिद्धांत के तौर पर इस बात को समझेंगे बल्कि वे अपनी सोच को भी विकसित करने में सफल रहेंगे। दूसरा रास्ता तब काम में लिया जा सकता है जब ऐसे स्कूल न हों या फिर इन स्कूलों में जाने के अवसर उपलब्ध न हों। इस परिस्थिति में शिक्षक प्रशिक्षक का अवधारणात्मक स्तर पर बहुत सचेत होना और शिक्षक–विद्यार्थियों को चिंतनशील बनाना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है ताकि उनमें समाजीकरण के कारण बनी एकांगी छवि में कुछ बदलाव हो सके। चूंकि ऐसी स्थिति में शिक्षक प्रशिक्षक से भी एक खास अपेक्षा होती है कि वह समावेशी शिक्षा के बारे में बिना खुद अनुभव किए पढ़ाए, तो यहां पर ऐसी अच्छी सामग्री जिसमें संज्ञानात्मक चुनौती की गुंजाइश हो उसे काम में लेनी चाहिए, बजाए सिर्फ समावेशी शिक्षा के सिद्धांत पर भाषण की खानापूर्ति करने के। इससे कहीं आगे बढ़कर उस पर चर्चा की जगह बनानी चाहिए ताकि भावी शिक्षकों को अपनी गढ़ी छवियों के बारे में विचार करने के लिए मजबूर किया जा सके जो कि काफी मुश्किल काम है।

एक उदाहरण देखें। अभी कुछ दिन पहले मैं एक शिक्षिका से शिक्षा के अधिकार कानून के सिलसिले में यह समझने की कोशिश कर रही थी कि 25 प्रतिशत वंचित वर्ग के बच्चों के स्कूल में आने के बाद क्या अन्य बच्चे कक्षा में किसी तरह का अलगाव महसूस कर रहे हैं और शिक्षक की इसमें क्या भूमिका है। शुरुआत में शिक्षिका ने कहा कि क्योंकि अब अलग–अलग पृष्ठभूमि के बच्चे एक कक्षा में हैं तो कुछ फर्क तो दिखता है लेकिन वे इन पर फोकस करने के बजाए कोशिश करते हैं कि सब बच्चों को एक सामान्य वातावरण का अनुभव मिले। बात आगे बढ़ी तो वे बताने लगीं कि वंचित वर्ग के बच्चों के साथ यह समस्या है कि वे अभद्र भाषा का प्रयोग करते हैं। उनके अपने मुहल्ले में भी इन वर्गों के बच्चों के होने के कारण वे अपने बेटे को उनके साथ खेलने नहीं देतीं क्योंकि उनका बेटा भी ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगा था। या फिर स्कूल में कुछ ऐसी चीजें भी करनी होती हैं जो इन बच्चों के कभी काम नही आएंगी जैसे पार्टी में व्यवहार करना सिखाना। अब यहां पर यह समझ आता है कि क्योंकि इस शिक्षिका को एक कक्षा में भिन्न पृष्ठभूमि के बच्चों के साथ काम करना ही पड़ता है तो वे कर रही हैं लेकिन उनकी मानसिकता में क्या वास्तव में कोई बदलाव आया है? चूंकि मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है तो फिर क्या वे उन बच्चों के साथ न्याय कर पाएंगी।

मानसिकता बदलने या फिर सोच विकसित करने के लिए उसका माहौल एवं उसकी समझ होना महत्त्वपूर्ण है। समावेशी वातावरण के प्रति हमारे मन में किस तरह की समझ बनती है उससे ही यह तय होगा कि हम कक्षा में बच्चों में भेद करने को बदल सकते हैं या हम उसे और अधिक बढ़ाने वाले हैं। जब तक हमारे सोचने के तरीके में अंदर से बदलाव नहीं आएगा तब तक दिखाने के लिए स्कूलों में समावेशी कक्षा तो जरूर बन जाएगी (जो शायद

एक हद तक पहले भी थी) लेकिन बच्चों के बीच भेदभाव होता रहेगा। क्या यह बच्चों पर अन्याय नहीं है? यह हमें एक और प्रश्न की ओर भी इशारा करता है कि ऐसी स्थिति में शिक्षा की गुणवत्ता का क्या मतलब होगा? यह गुणवत्ता आखिर किन बच्चों के लिए होगी और कौन से बच्चे हैं जो इससे वंचित हो रहे हैं या होने की संभावना होगी।

अब हम दूसरे बिंदु पर आते हैं और यह देखने की कोशिश करते हैं कि एक समावेशी कक्षा में बच्चों की क्या भूमिका होती है। समावेशी शिक्षा में क्या यह अंतर्निहित नहीं होता कि बच्चे सीखने एवं निर्णय करने के स्तर पर स्वायत्त हों? बच्चे एक कक्षा में स्वायत्तता की तरफ तब बढ़ते हैं जब उनकी बातों का, उनके विचारों का कोई मूल्य होता है कि वे सुने जाएं और उनको महत्त्व दिया जाए। कक्षा में बच्चे एक–दूसरे से कैसे सीखेंगे जबकि कक्षा में उन्हें एक–दूसरे से बातचीत करने की मनाही होती है या फिर उन्हें विभिन्न तरीकों से यह संदेश मिलता है कि सिर्फ शिक्षक की बात ही सत्य या महत्त्वपूर्ण होती है और उनकी बताई बातों का ही पालन करना है। सिद्धांत रूप से तो हर कक्षा में बच्चे स्वायत्त होने चाहिए। मान्यता यह है कि यदि बच्चे स्वायत्त होंगे तो एक–दूसरे की बहुत सारी चीजों में मदद करेंगे, साथ मिलकर काम करेंगे और सीखने में भी यही रुख अपनाएंगे।

एक समावेशी कक्षा का अच्छे से चलना तभी संभव हो सकता है जब बच्चों की दिनचर्या में यह निहित हो कि वे एक–दूसरे से सीखें, समझें कि सब एक–दूसरे के बराबर हैं, गलतियां करने का स्थान हो ताकि वे उनसे सीखें। अब अगर हम समावेशी शिक्षा के नाम पर बच्चों के सामने अचानक बोलने लगें कि हमें 'इन' बच्चों की मदद करनी चाहिए तो फिर अगर बच्चे एक–दूसरे को अलग से न भी देख रहे होते हैं तो देखना शुरु कर देंगे क्योंकि यह बात उनकी हर रोज की दिनचर्या से हटकर है। उनकी सामान्य जिंदगी की बात यह नहीं बन पाती है, जैसा कि आपने नई तालीम के स्कूल के उदाहरण में देखा कि वहां कुछ मूल्य एवं मान्यताएं इस तरह से स्कूल के माहौल में रची–बसी हैं जिनसे चीजें स्वतः होने लगती हैं और स्कूल में आने वाले नए बच्चे भी उस माहौल को धीरे–धीरे समझने लगते हैं, उसमें रचने–बसने लगते हैं तथा उन मूल्यों को एक सकारात्मक नजर से देखते हैं।

समावेशी शिक्षण करना शायद मुश्किल लगता है। लेकिन इसे सिर्फ शिक्षक के कार्य नहीं बल्कि शिक्षक एवं बच्चे दोनों के सम्मिलित कार्य के रूप में देखना चाहिए। इससे न केवल शिक्षक का बोझ हल्का होगा बल्कि हमारी गढ़ी हुई छवियों को बदलने का मौका भी मिलेगा। ऊपर उदाहरण में वर्णित बच्चे भी हमें सिखा सकते हैं कि अगर हम बच्चों को कक्षा की प्रक्रियाओं में उतना ही शामिल करें जितना हम अपने आप को करते हैं तो ये समावेशी शिक्षा को हासिल करने के लिए पर्याप्त कदम होंगे और जिसमें हम न तो किसी तरह की दया के भाव का विकास कर रहे होंगे और न ही उनको असहजता में डाल रहे होंगे अपितु एक–दूसरे की विभिन्नताओं को समझने का मौका देते हुए एक ऐसी समझ का निर्माण करने की तरफ बढ़ रहे होंगे जो एक लोकतांत्रिक देश के विकास के लिए आवश्यक है।

प्रियंका गोस्वामी : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से एम.ए. (शिक्षा) करने के बाद दिगंतर, जयपुर के अकादमिक स्रोत केंद्र में कार्यरत हैं।